International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 3; Issue 2; March 2018; Page No. 759-760

महिला एवं बालिका शिक्षाः एक नूतन विमर्श

शैलजा राय
शोध छात्रा, नेहरू ग्राम भारती विश्वविद्यालय कोटवा, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

पाठ्य पुस्तकों में पुरुषों, महिलाओं तथा जाति विशेष के लिए विशेष काम–काज के बारे में दकियानूसी विचार अब भी जारी हैं और चित्रों, वाक्यों तथा उदाहरणों में झलकते हैं। शहरी और ग्रामीण रूढ़ियों को बढ़ावा ही नहीं दिया जाता बल्कि शहरी रूढ़ियों को ग्रामीण रूढ़ियों से और गैर आदिवासी को आदिवासी की अपेक्षा बेहतर दिखाया भी जाता है। अधिकतर उदाहरण शहर केद्रित होते हैं। नायक एवं नेता पुरुष ही होते हैं और देख–भाल करने एवं घर संभालने वाली हमेशा महिला ही होती हैं जबकि शिक्षा उन व्यवस्थाओं का अटूट अंश है, जो बच्चों के जीवन को तय करती हैं सर्वविदित है कि शिक्षा में लैंगिक समानता और बालिकाओं को प्राथमिक शिक्षा की उपलब्धता को प्रोत्साहन दिए जाने पर तीन अंतर्संबंधित मुद्दोंः शिक्षा एवं अर्थव्यवस्था, समाज एवं संस्कृति की सर्वांगीणता, सामग्री एवं प्रक्रिया का प्रभाव होता है इस मुद्दे को अब दोहराने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि अब यह मुख्यधारा के विश्लेषण का अटूट अंग बन चुका है। इस तथ्य को लगभग एकमत से स्वीकार किया जाता है कि लैंगिक अंतराल को एक श्रेणी के रूप में वृहत्तर सामाजिक, क्षेत्रीय एवं स्थानिक संदर्भ में देखे जाने की आवश्यकता है। भारत प्रचुर विविधता वाली भूमि है और अत्यधिक विषमता वाला देश भी है। सामाजिक–आर्थिक असमानताओं एवं लैंगिक संबंधों का अंतर्निहित संबंध एक जटिल जाल तैयार करता है, जो स्कूल में शिक्षा प्राप्त करने की बालिकाओं की क्षमता को या तो बढ़ाता है या उसमें बाधा उत्पन्न करता है। यद्यपि आर्थिक विषमताएं एवं सामाजिक असमानताएं निश्चित रूप से महत्वपूर्ण हैं किंतु कई शोधकर्ता तर्क देते हैं कि सांस्कृतिक विश्वास एवं रीतियां तथा क्षेत्रीय विशेषताएं महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। इसलिए भारत में गरीबी, सामाजिक असमानता एवं लैंगिक संबंधों के अंतर्जाल को समझना महत्वपूर्ण है। ये तीनों देश के अलग–अलग हिस्सों में अलग–अलग तरीके से एक दूसरे के संपर्क में आती हैं– कहीं इनमें से एक घटक दूसरे को बढ़ावा देता है और कहीं वह उसक प्रभाव को कम करता है। इसे समझना और सुलझाना आज की सबसे बड़ी चुनौती है। इस संदर्भ में निम्नलिखित बातों को स्वीकार करने की आवश्यकता है

- नामांकन, उपस्थिति एवं शिक्षा पूर्ण करने के मामले में शहरों एवं गांवों का अंतर पुरुष–महिला अंतर से अधिक है।
- पिछड़े–अगड़े इलाकों के अथवा क्षेत्रीय अंतर लैंगिक एवं सामाजिक समूहों के अंतर की तुलना में कहीं अधिक हैं।
- अत्यंत गरीब परिवारों गरीबी की रेखा से नीचे एवं उच्चतम तबके के बीच विषमता लैंगिक, सामाजिक तथा क्षेत्रीय अंतरों की अपेक्षा बहुत अधिक है।

1990 के दशक में शिक्षा में लैंगिक अंतर का अधिकतर विश्लेषण स्कूलों के प्रावधान उपलब्धता/आपूर्ति एवं ''मांग'' को मापने से अर्थात् यह जानने से आरंभ हुआ था कि परिवार अपने बच्चों विशेषकर लड़कियों को स्कूल भेजने के लिए कितने तैयार हैं। किंतु जैसे–जैसे समय बीता, यह अनुभव किया गया कि शिक्षा के लिए आपूर्ति एवं मांग को अलग नहीं किया जा सकता, जब भी स्कूल पहुंच के भीतर होते हैं और वे स्कूल नियमित होते हैं एवं अच्छी तरह काम कर रहे होते हैं तो मांग बढ़ जाती है। इसी तरह जहां स्कूल गड़बड़/घटिया थे, जिनमें ज्यादा शिक्षण नहीं होता था और जहां समुदायों को यह विश्वास नहीं था कि स्कूल उनकी बेटियों के लिए सुरक्षित हैं, वहां मांग एकदम कम हो गई। यह माना गया कि अच्छी तरह कार्य करने वाले स्कूल पारिवारिक निर्णयों को प्रभावित करने वाले महत्वपूर्ण घटक हैं

शिक्षा में लैंगिक अंतराल की समस्या का समाधान आसान नहीं है। असमानता की परतों एवं जाति तथा समुदाय आधारित लामबंदी की बढ़ती घटनाओं को देखते हुए नामांकन एवं बदलाव के मानक सूचकों से परे जाने एवं स्कूलों में बच्चों के अनुभव को गहराई से देखने की आवश्यकता है। शिक्षा में लैंगिक अंतर/लैंगिक समानता की प्रगति मापने वाले उपकरण समाज में व्याप्त तथा वर्तमान शिक्षा व्यवस्था द्वारा बढ़ाई जा रही असमानताओं की बनावट के बारे में बहुत कम बताते हैं। शिक्षा में लैंगिक तथा सामाजिक समानता के मुद्दों को ऐसे ढांचे की आवश्यकता है, जो विषमांगी लैंगिक यथार्थों एवं विविध दोषों को प्रदर्शित कर सके । भारत में लैंगिक असमानता का मुद्दा जटिल सामाजिक एवं संस्थागत ढांचे में उलझा है। इसलिए शिक्षा में लैंगिक असमानताओं को एक ओर सामाजिक, आर्थिक एवं स्थान विशेष संबंधी असमानताओं और दूसरी ओर वर्तमान स्कूल व्यवस्था के व्यापक ढांचे में देखे जाने की आवश्यकता है।

सुरक्षित एवं भेदभाव रहित वातावरण

कहा जाता है कि स्कूल उस समाज का सूक्ष्म रूप होता है, जिसमें हम रहते हैं। समाज में प्रचलित अंतर्वैयक्तिक एवं अंतर्सामूहिक चलन अक्सर स्कूल में भी दिखाई देते हैं। यदि शिक्षकों को पर्याप्त संवेदनशील नहीं बनाया गया है और पर्याप्त प्रशिक्षण नहीं दिया गया है तो उनका व्यवहार और पूर्वाग्रह स्कूल में भी आ सकते हैं। शैक्षिक प्रशासक एवं राजनेता स्कूलों में व्याप्त भेदभाव के लिए इसे बहाना बनाते रहते हैं। इस मामले में हमें उन देशों से बहुत कुछ सीखने की जरूरत है, जिन्होंने इस प्रवृत्ति का सपफलतापूर्वक मुकाबला किया है और इस बात पर जोर दिया है कि स्कूलों तथा सार्वजनिक वित्त पाने वाले संस्थानों को संविधान में निर्दिष्ट अधिकारों तथा बाध्यताओं का पालन करना पड़ेगा। भारत के संविधान में स्थापित समानता के अधिकार तथा भेदभाव के विरुद्व अधिकार को देखते हुए शिक्षकों एवं सभी शिक्षा प्रशासकों का यह

कर्तव्य है कि स्कूलों में भेदभाव रहित वातावरण सुनिश्चित हो। शिक्षकों एवं प्रधानाध्यापकों को जाति, धर्म, लिंग, क्षमता एवं आर्थिक स्तर के आधार पर भेदभाव करने की आजादी नहीं है। भारत के संविधान को निर्देशक तत्व मानते हुए शिक्षकों, प्रशासकों और सामुदायिक नेताओं को यह बताए जाने की आवश्यकता है कि असमानता वेफ अधिकार और भेदभाव के विरुद्व अधिकार का उल्लंघन किए जाने पर कठोर दंडात्मक कार्रवाई होगी। उन सभी को बिना समझौते वाली आचार संहिता समझाए जाने की आवश्यकता है, जो स्कूली शिक्षा से जुड़े हैं। यह काम में लिखित में होना चाहिए और सभी स्कूलों तथा शिक्षा संस्थानों में प्रमुखता से प्रदर्शित किया जाना चाहिए। इसके साथ ही बच्चों विशेषकर लड़कों को ऐसी गतिविधियों में शामिल किया जाना चाहिए, जिनसे उन्हें विविधता को समझना और सराहना, असहमति का आदर करना आ सके तथा अन्य बच्चों और लड़कियों के प्रति व्यवहार के स्कूली नियम बनाना आ सके। समतामूलक वातावरण तैयार करने में बच्चों को शामिल करने से शिक्षकों, प्रशासकों एवं स्थानीय नेताओं पर भी भेदभाव नहीं करने का नैतिक दबाव पड़ सकता है। आज शिक्षकों का अनुकूलन एवं प्रशिक्षण प्रशासनिक जरूरतों एवं विषय के ज्ञान तक सीमित रहता है। शिक्षकों में प्रशिक्षण की अति और थकान हो जाने के प्रमाण भी बढ़ रहे हैं। इसके साथ ही कम अवधि के प्रशिक्षण कार्यक्रम विषय की मौलिक जानकारी एवं अध्यापन कला से जुड़े मुद्दों के साथ न्याय नहीं कर पाते हैं। स्कूलों को भेदभाव मुक्त बनाने के लिए शिक्षकों एवं सामुदायिक नेताओं के बीच बातचीत हेतु वैकल्पिक मंच बनाना अच्छा कदम साबित हो सकता है। वास्तव में हमें धरातल पर स्थाई परिवर्तन लाने के लिए स्कूलों में भेदभाव पर गंभीरता से विचार करने और सभी स्तरों पर कार्य करने की आवश्यकता है। कोई छोटा रास्ता नहीं है और सरकार तथा नागरिक समाज के संगठनों को इस मुद्दे पर गंभीरता से विचार करने एवं प्रत्येक संदर्भ में इस पर कार्य करने की आवश्यकता है।

हमारी पाठ्यपुस्तकों को खुल्लम–खुल्ला और गुपचुप पूर्वाग्रहों एवं रूढ़ियों से मुक्त कराने के मुद्दे पर दो दशकों से शोरशराबा हो रहा है लेकिन वास्तविकता यही है कि हमारी पाठ्यपुस्त के लैंगिक असमानताओं एवं सामाजिक उंच–नीच की बातों को बढ़ावा देती हैं। पुरुषों के योग्य और महिलाओं के योग्य तथा जाति विशेष के योग्य काम–काज के बारे में दकियानूसी विचार अब भी जारी हैं और हमारी पाठ्यपुस्तकों में चित्राों, वाक्यों तथा उदाहरणों में झलकते हैं। शहरी और ग्रामीण रूढ़ियों को बढ़ावा ही नहीं दिया जाता बल्कि शहरी रूढ़ियों को ग्रामीण रूढ़ियों और गैर आदिवासी को आदिवासी की अपेक्षा बेहतर दिखाया भी जाता है। विभिन्न विषयों में अधिकतर उदाहरण शहर केद्रित होते हैं। नायक एवं नेता पुरुष ही होते हैं और देख–भाल करने एवं घर संभालने वाली हमेशा महिला ही होती हैं। इस यथार्थ को देखते हुए एनसीएपफ 2005 फोकस समूह ने तर्क दिया कि, शिक्षा उन व्यवस्थाओं का अटूट अंश है, जो बच्चों के जीवन को तय करती हैं। पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तके समतामूलक मूल्यों एवं विविधता तथा असहमति के सम्मान और भेदभाव के प्रति सतर्क रहना सिखा भर सकती हैं। लड़कों को यह सिखाए जाने की आवश्यकता है दूसरों का सम्मान करना चाहिए और किसी के इनकार का सम्मान करना चाहिए। यौन दुर्व्यवहार जिसे छेड़छाड़ का अनुचित नाम दिया गया है की घटनाओं से लड़ने के लिए यह आवश्यक है। इसके साथ ही मर्दाना;पुरुष संबंधी एवं जनाना महिला संबंधी के फर्क पर भी सवाल खड़े करने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

पिछले पचास वर्षों में विभिन्न योगों और समितियों ने मुद्दों और चिंताओं की सूची तैयार की है और तमाम तरह की रणनीतियां भी बताई गई हैं। जब मैंने विचार किया कि ये सिफारिशें और रणनीतियां लागू क्यों नहीं हो सकीं तो मुझे महसूस हुआ कि सबसे पहले हमें कुछ सूत्रों पर सहमत होना पड़ेगा, जिनसे समझौता नहीं किया जाएगा। यदि उन पर टिका गया तो अन्य घटकों के भी सही होने की संभावना बढ़ जाएगी। इसी को ध्यान में रखते हुए मैंने केवल तीन मुद्दों पर जोर दियाः शिक्षा की सार्थक उपलब्धता, भेदभाव से मुक्ति तथा ज्ञान के विकास में लैंगिक संवेदनशीलता को प्रमुख स्थान देना। यदि हम इन तीनों पर जोर दे सके तो संभवतः हम व्यापक लैंगिक समानता एवं सामाजिक न्याय की ओर बढ़ना आरंभ कर सकेगे। अतीत से विरासत में मिली कुलीनतावादी शिक्षा व्यवस्था को जनसमान्यवादी एवं समानता तथा सामाजिक न्याय के आधारित शिक्षा व्यवस्था में बदलने का कार्य आरंभ किए भारत को छह दशक से अधिक बीत चुके हैं। यह कार्य आसान नहीं रहा है। देश को लगातार बढ़ती जनसंख्या का सामना भी करना पड़ा, जिसके कारण बच्चों को स्कूलों तक पहुंचाने और सभी को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करने की दिशा में हुई प्रगति धीमी लगने लगी। छह दशक से भी अधिक समय से जारी यह प्रयास कई महत्वपूर्ण नीतिगत उपायों का साक्षी बना हैं।

संदर्भ

1. राम मनोहर लोहिया, सामंती भाषा बनाम लोकभाषा
2. नेशनल करिकुलम प्रेफमवर्वफ 2005,
3. गीता बी नांबिसन; 2000 'डीलिंग विद डेप्रिवेशन', सेमिनार, सितंबर, संख्या 493, पृष्ठ 9
4. गीता बी नांबिसन ;2001 ए वैद्यनाथन एवं पी आर गोपीनाथ नायर द्वारा संपादित एलीमेंट्री एजूवेफशन इन रूरल इंडियाः
5. इक्विटी एंड डेवलपमेंटः वर्ल्ड बैंक डेवलपमेंट रिपोर्ट 2006 बैकग्राउंड पेपर्स, विश्व बैंक, वाशिंगटन डीसी, 2004।
6. गीता बी नांबिसन, 1996ः इक्विटी इन एजूवेफशन? स्वूफलिंग ऑपफ दलित चिल्ड्रन इन इंडिया, इकनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, अंक 31 ;16–19